नियमसार, १०० गाथा का तीसरा श्लोक। ऊपर पद्मनन्दिपंचविंशति का तीसरा श्लोक है।

आचारश्च तदेवैकं तदेवावश्यकक्रिया।
स्वाध्यायस्तु तदेवैक-मप्रमत्तस्य योगिनः।।

क्या कहते हैं ? **अप्रमत्त योगी...** अर्थात् कि प्रमत्तयोगी को तो अभी विकल्प आता है। तीन कषाय का अभाव होने पर भी व्यवहार आवश्यक आदि व्यवहार आचार का विकल्प जाननेयोग्य होता है। इन्हें (अप्रमत्तयोगी को) तो विकल्प होता ही नहीं। यह बात ली है; इसलिए अप्रमत्तयोगी लिये हैं। प्रमत्तयोगी नहीं। प्रमत्तयोगी हैं, मुनि हैं, सच्चे सन्त हैं, तथापि छठवें गुणस्थान में प्रमत्तयोगी को प्रमाद का विकल्प-राग होता है। वह राग हेयरूप से है, परन्तु होता है। अप्रमत्त को वह नहीं होता। छठवें के बाद तुरन्त ही सातवाँ (गुणस्थान) आता है। मुनि की दशा ऐसी है कि पहले पाँचवें से, चौथे से सातवाँ गुणस्थान आता है। पहले तो सातवाँ अप्रमत्त ही आता है। फिर उसमें से विकल्प उठे तो छठवाँ

गुणस्थान आता है। फिर छठवाँ आता है, सातवाँ आता है, छठवाँ आता है, सातवाँ आता है—ऐसे हजारों बार आता है। परन्तु छठवें गुणस्थान तक अभी वीतरागता होने पर भी, पूर्ण वीतरागता नहीं है; इसलिए उन्हें अभी शुभराग-विकल्प-व्यवहार आचार आदि का होता है। ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार (तपाचार और वीर्याचार) पाँच आचार है न? उनके विकल्प होते हैं। यह प्रवचनसार में शुरुआत में चरणानुयोग में लिया है।

यहाँ **अप्रमत्त योगी...** विकल्प छूटकर अन्दर ध्यान में जाते हैं। उन **अप्रमत्त योगी को वही एक आचार है,...** आहाहा! यह पंच महाव्रत के परिणाम और समिति-गुप्ति, ऐसा आचार उन्हें नहीं है। सातवाँ गुणस्थान आया, वह मुनि को होता ही है। सातवाँ आता है, छठा-सातवाँ, छठा-सातवाँ। ऐसे यहाँ सातवें (गुणस्थान) की बात मुख्य की है। **अप्रमत्त योगी को वही एक आचार है,...** वह एक ही आचार है। अन्दर सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र आचार निर्विकल्प, वह एक ही आचार है। उन्हें व्यवहार आचार है नहीं। आहाहा! यह पंचम काल के मुनि, पंचम काल के जीव को कहते हैं कि मुनि की यह दशा होती है। वे अप्रमत्त में आते हैं, तब उन्हें इस प्रकार का विकल्प नहीं होता। ऐसी दशा को वह एक ही आचार सच्चा है - ऐसा कहते हैं। छठवें गुणस्थान में आवे और व्यवहार आचार आवे, परन्तु वह कोई बात व्यवहारकथनमात्र आचार (है)। अन्दर आनन्द में स्थिर होते हैं, वह एक ही आचार है। समझ में आया? आहाहा!

तीन कषाय का अभाव होने पर भी, मुनि को सम्यग्दर्शनपूर्वक वीतरागता होने पर भी अभी छठवें गुणस्थान में व्यवहार से विकल्प आता है। तो कहते हैं कि वह कुछ वस्तु नहीं है। आहाहा! वह कुछ आचार नहीं है। अप्रमत्तयोगी को तो एक ही आचार है। वह आत्मा का आचार, आत्मा के आनन्द में एकाग्रता। अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा में लीनता-एकाग्रता, वह एक ही आचार है। ऐसा मुनिपना ऐसा होता है, यह अभी श्रद्धा में सुना न हो। देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा... आहाहा!

अप्रमत्त योगी को वही एक... अथवा वह एक ही **आचार है,...** ज्ञानानन्दस्वभाव में रमणता, निर्विकल्परूप से ज्ञान-दर्शन-चारित्र-आनन्द में वीतरागभाव का जो भाव, वह एक ही आचार अप्रमत्त योगी सन्त आत्मा को होता है। उसे यहाँ मुख्य वीतरागता गिनी है। आहाहा! **वही एक आवश्यक क्रिया है...** अप्रमत्तयोगी है। छठवें से हटकर अन्दर में

जाते हैं, तब उन्हें सामायिकरूप से वीतरागी ही भाव होता है। चौबीसंथो वीतराग की स्तुति, यह भी वह अन्दर में स्तुति, आत्मा की वह स्तुति, वह आवश्यक है। छह बोल आते हैं न? सामायिक, चौबीसंथो, वन्दना, प्रतिक्रमण, कायोत्सर्ग और प्रत्याख्यान (ये) छह। यह छहों आवश्यक क्रिया... आहाहा! **अप्रमत्त योगी को वही एक...** आवश्यक क्रिया है। छठवें गुणस्थान में आवश्यक क्रिया का व्यवहार से विकल्प आता है, परन्तु वह कोई वस्तु नहीं है। वह तो कहनेमात्र, कथनमात्र है। वस्तुस्वरूप यह है। आहाहा!

अन्दर एक ही आचार है और एक ही क्रिया। **वही एक आवश्यक...** अवश्य क्रिया करने के योग्य होवे तो; मुनि को अप्रमत्तपने में जो आवश्यक क्रिया होती है, वही करनेयोग्य है। आहाहा! श्वेताम्बर के भगवती सूत्र में तो ऐसा आता है कि छठवाँ गुणस्थान... करोड़ पूर्व तक रहता है और सातवाँ गुणस्थान अन्तर्मुहूर्त रहता है। पूरा उसमें..। ऐसा भगवती में लेख है। अर्थ ही एकदम सत्य से दूर है। यहाँ तो अप्रमत्तदशा अन्तर्मुहूर्त रहती है और प्रमत्तदशा अन्तर्मुहूर्त रहती है, फिर अप्रमत्त आती है; इस प्रकार प्रमत्त-अप्रमत्त हजारों बार अन्तर्मुहूर्त में हजारों बार अन्त में आती है। सैकेण्ड, पौन सैकेण्ड लगभग में छठवाँ गुणस्थान रहता है और पौन सैकेण्ड के आधे भाग में सातवाँ गुणस्थान रहता है, तथापि उसे अन्तर्मुहूर्त कहा जाता है। असंख्य समय है न? भले एक सैकेण्ड, परन्तु वह असंख्य समय है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं **वही एक आवश्यक क्रिया है...** अवश्य करनेयोग्य यही है। आगे आवश्यक अधिकार में कहेंगे कि द्रव्य-गुण और पर्याय का विचार करे, वह भी आवश्यक नहीं है। वह पराधीन है। तीन का विचार करे, वह विकल्प है, वह पराधीन है; वह परमार्थ आवश्यक नहीं है। आहाहा! अन्त में आवश्यक का अधिकार है न! द्रव्य-गुण और पर्याय, ऐसे एक के तीन विचार में आवे, वह भी वास्तविक आवश्यक नहीं। वह शुभभाव आया, वह भी पराधीन है। आहाहा! वीतराग का मार्ग सुनना कठिन पड़े! यह तो कोई वीतरागमार्ग ऐसा होगा? अभी तक तो हमने, ऐसा करो, वैसा करो—ऐसा सब... मार्ग ही यह है। पाठ क्या कहलाता है?

वह एक ही आवश्यक है; दूसरा आवश्यक है ही नहीं। आहाहा! छठवें गुणस्थान में है तो वह कथनमात्र, व्यवहार कथनमात्र है। जाननेयोग्य है। वस्तुस्थिति से नहीं। आहाहा!

समझ में आया ? सामायिक या निर्विकल्प आनन्द में अन्तर रहा हो, वह एक ही आवश्यक सामायिक क्रिया है। चौबीसंथो, चौबीस तीर्थंकर की स्तुति कि अन्दर निर्विकल्प में एकाकार होकर रहा, वह एक ही आवश्यक स्तुति है। है न ? सामायिक, चौबीसंथो, वन्दन – वह स्वरूप में – आनन्द में अकेले वन्दन में रहना विकल्प बिना, वह एक ही वन्दनरूपी तीसरा आवश्यक है। आहाहा ! सामायिक, चौबीसंथो, वन्दन, प्रतिक्रमण। यह निश्चय से प्रतिक्रमण भी यह एक ही है। अप्रमत्तयोगी को निश्चय प्रतिक्रमण है। विकल्प उठता है, वह तो कथनमात्र है। यह तो आ गया है। निर्यापक आचार्यों ने छह सूत्र प्रतिक्रमण बनाया है। वह होता है, परन्तु पश्चात् उसका फल छोड़कर अन्दर में जाना वह है। आहाहा !

अब अन्दर में क्या है ? कहाँ है ? कौन है ? उसकी तो खबर भी नहीं होती। आहाहा ! आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु अतीन्द्रिय ज्ञान और अतीन्द्रिय आनन्द से भरचक भरपूर प्रभु है। ऐसे-ऐसे वीतरागी अनन्त गुण से भरपूर है। वीतरागी अनन्त गुणों से भरपूर है। उसमें स्थिर होना, वह एक ही वन्दन है। वह वन्दन, स्तुति यह चौथा बोल आया न ?

सामायिक, स्तुति या वन्दन तीसरा। यह वन्दन, वह वन्दन है। प्रतिक्रमण भी वही है। प्रत्याख्यान भी वही है। आहाहा ! और कायोत्सर्ग। वह भी आत्मा अनाकुल आनन्दस्वरूप में अप्रमत्तदशा में रमे, वही कायोत्सर्ग है। यह कायोत्सर्ग करते हैं न ? 'तस्सूतरी करणेणं, प्रायश्चित्त करणेणं।' कायोत्सर्ग नहीं करते ? सामायिक में पहले। वह सब कायोत्सर्ग नहीं है। वह सब राग है।

यहाँ तो एक ही कायोत्सर्ग है – ऐसा कहा है। स्वरूप—आनन्दस्वरूप में, अप्रमत्तदशा में जिसने अतीन्द्रिय आनन्द को पहले जाना हो, अनुभव किया हो, उसे यह स्थिति आवे या कुछ जाना नहीं, उसे यह स्थिति आयेगी ? आहाहा ! समझ में आया ? पहले आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय वीतरागमूर्ति है, ऐसा अन्दर में पहले अनुभव-ज्ञान में आवे, ज्ञान में वह चीज़ ज्ञात हो। जो जाना हुआ है, उसमें स्थिर हुआ जाता है। जो चीज़ जानी नहीं, उसमें स्थिर होना क्या ? आहाहा ! ऐसा मार्ग ! यह तो कहे, भाई ! चौथे काल की बात है। चौथे काल के साधु की बात होगी। तो यह कहते हैं पंचम काल का साधु मैं। अभी ९०० वर्ष हुए। मैं ऐसा कहता हूँ कि मुझे तो यह आवश्यक है। आहाहा ! कठिन काम है।

जैनदर्शन वीतराग सर्वज्ञ ने कहा हुआ मार्ग। यहाँ तो विशिष्टता क्या है ? कि एक ही सामायिक का प्रकार है, एक ही चौबीसंथो का प्रकार है, वन्दन एक ही है, प्रतिक्रमण एक ही है, प्रत्याख्यान और कायोत्सर्ग भी एक ही है। एक ही प्रकार है। दो नहीं। आहाहा! यह सम्प्रदाय में चलता है, उसका क्या करना ? अकेला चल न! आहाहा! यह अकेला चले वह व्यवहार ही नहीं है, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। वह तो निश्चय आत्मा का अनुभव हो, उसे वह विकल्प आवे तो व्यवहार कहलाता है परन्तु वास्तव में वह तो कथनमात्र है। निश्चय में तो अन्दर अप्रमत्तयोग में रमता है, उसे ही हम, एक को ही हम आवश्यक कहते हैं – ऐसा कहते हैं। आहाहा! इसमें है या नहीं ? ऐसा सब फेरफार होगा ? यशपालजी! वहाँ महाराष्ट्र में ऐसा सुना है ? आहाहा! ऐसी बात वहाँ सुनी है ? आहाहा!

यह शास्त्र कहीं घर का बनाया हुआ नहीं है। यह तो दो हजार वर्ष पहले कुन्दकुन्दाचार्य का बनाया हुआ है। आहाहा! इसकी टीका फिर पद्मप्रभमलधारिदेव ने बनायी है। वे स्वयं कहते हैं कि अप्रमत्तदशा में जो यह सामायिक है, वह एक ही सामायिक है। छठवें गुणस्थान में भी जो कुछ शान्ति वर्तती है और विकल्प वर्तता है, वह विकल्प सामायिक का कथनमात्र व्यवहार है। यह एक ही सामायिक है। दो सामायिक (नहीं) है। एक निश्चय सामायिक और व्यवहार सामायिक, ऐसी दो है ही नहीं। यहाँ तो ऐसा कहते हैं। आहाहा! भाई कहाँ गये ? गये ? बुखार आया है ? क्या कहा, समझ में आया ? यह पाठ है, हों!

तदेवैकं शब्द है न ? एक ही यह। बस एक को ही हम सामायिक चौबीस.. वन्दना, प्रतिक्रमण, कायोत्सर्ग, प्रत्याख्यान कहते हैं। आहाहा! यह सब व्यवहार ? व्यवहार कहते हैं, वह तो कथनमात्र है। वास्तविक वह कोई चीज़ नहीं है। आहाहा! यहाँ एक ही कहा है न ? कि पद्मनन्दिपंचविंशतिका का आधार दिया है। उसका यह श्लोक है। पद्मनन्दिपंचविंशति, मुनि आचार्य हो गये हैं। महादिगम्बर आचार्य... आहाहा! कहते हैं कि मैं कहता हूँ कि सामायिक दो प्रकार की नहीं है। एक निश्चय सामायिक और एक व्यवहार सामायिक। यह यहाँ निषेध करते हैं। आहाहा! अन्दर में निश्चय सामायिक वह एक ही है। वीतरागभाव से रमना, वीतरागभाव का अन्दर स्वाद लेना, वह एक ही सामायिक है और प्रभु की स्तुति भी वह पूर्णानन्द का नाथ, उसकी स्तुति, उसमें एकाग्रता, वह एकत्व चौबीसंथो है। आहाहा! और उसे वन्दन करना, वह एक ही वन्दन है। पहले

अपने आ गया है। नमस्कार करनेयोग्य। इस ओर (आ गया है)। नमस्कार करनेयोग्य वह एक ही जीव है। इसके पहले आ गया है। है ?

इससे पहले का श्लोक। **सत्पुरुषों को वही एक नमस्कारयोग्य है,...** सत्पुरुषों को.. आहाहा! धर्मी-ज्ञानी को तो वह एक ही नमस्कारयोग्य है। अधर्मी-अज्ञानी चाहे जिसे नमस्कारयोग्य माने। और उस नमस्कार में से लाभ मानता है, ऐसा। आहाहा! ऐसा सुना नहीं होगा। वीतरागमार्ग ऐसा है। आहाहा!

मुमुक्षु : यह तो मुनि के लिये है।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु मार्ग यह है, ऐसा पहले वह निर्णय तो करे। भले मुनि के लिये है परन्तु देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा तो सच्ची करे कि मुनि ऐसे होते हैं। मुनि कैसे होते हैं उसकी खबर न हो, उसकी श्रद्धा विपरीत है। अमुनि को मुनि माने, वह मिथ्यात्व मान्यता है। आहाहा! साधु को कुसाधु माने, कुसाधु को साधु माने - ऐसा नहीं आता ? पच्चीस प्रकार के मिथ्यात्व में आता है। प्रतिक्रमण में। आहाहा!

यहाँ कहते हैं **वही एक आवश्यक क्रिया है...** आहाहा! आचार्यों की तो कड़क भाषा। श्रीमद् कहते हैं कि दिगम्बर आचार्यों के तीव्र वचन के कारण रहस्य कुछ समझा जा सकता है। यह वीतरागता का वर्णन... वीतराग... वीतराग... वीतराग... वीतराग... वीतराग... उस आत्मावलोकन में यही कहा है। मुनि का उपदेश, उस उपदेश में वीतरागता ही होती है। राग से रहित वीतराग... वीतराग... वीतराग... वीतराग... आहाहा! क्योंकि वस्तुस्वरूप स्वयं वीतराग है, इसलिए उसके आश्रय से होनेवाली दशा वीतराग है और उसके आश्रय से पूर्ण दशा होने पर पूर्ण वीतराग बारहवें और तेरहवें गुणस्थान में वीतराग होता है। आहाहा!

प्रभु वीतरागस्वरूप है। उसके आश्रय से वीतरागता होती है; दूसरे के आश्रय से वीतरागता नहीं होती और उसका पूर्ण आश्रय हो तो वीतराग पर्याय में पूर्ण वीतरागता होती है, वीतरागता पूर्ण होती है तो अन्तर्मुहूर्त में केवलज्ञान होता है। आहाहा! बारहवें गुणस्थान में वीतरागता होती है, तेरहवें गुणस्थान में केवलज्ञान होता है। आहाहा! ऐसी बातें। ऐसा सीधा-सट्ट था। एक घण्टे सुनने जाए। नागनेश में सुनने जाए। शान्तिभाई! वह तुम्हारे

वाँचते थे न क्या ? रूगनाथभाई। अब उनके लड़के को फिर प्रेम था। कांप में। लालचन्दभाई को प्रेम था। वे गुजर गये, उन्हें प्रेम-लगन थी, पढ़ते थे।

अरे! यह पक्ष भी कहाँ है ? बापू! यह तो सत् के पक्ष में परमात्मा के पक्ष में खड़ा रहा। परमात्मा के पक्ष में खड़ा रहा। आहाहा! भले अभी अन्दर जा न सके परन्तु पक्ष में खड़ा है। आहाहा! **वही एक...** वह एक ही सामायिक, चौबीसंथो, वन्दन, प्रतिक्रमण, कायोत्सर्ग, प्रत्याख्यान है। यह वीतरागस्वरूप भगवान त्रिकाली चीज़, वह स्वयं वीतराग मूर्ति प्रभु है। वीतरागमूर्ति कहो या अकषायस्वभाव कहो, या चारित्रस्वरूप कहो। त्रिकाली चारित्र, हों! त्रिकाली। आहाहा! उस स्वरूप में एकाग्रता, वह एक ही आवश्यक कहलाता है। आहाहा!

वही एक स्वाध्याय है... यह स्वाध्याय करते हैं न। वाँचन करते हैं। दो-दो घण्टे, चार-चार घण्टे वाँचन करे। आहाहा! यहाँ तो स्व+अध्याय। अपने अन्तर में ज्ञान की एकाग्रता, वह एक ही स्वाध्याय है। वह स्वाध्याय भी एक ही है। दिगम्बर सन्त गजब बात करते हैं न! स्वाध्याय तप है, ऐसा कहकर वह बाहर का स्वाध्याय पढ़े, वह तप है। वह तप नहीं, बापू! वह तो व्यवहार की बातें की हैं। आहाहा! **तथा वही एक स्वाध्याय है।** दो स्वाध्याय नहीं। आहाहा! मुनि को कहाँ पड़ी है ? जगत की कहाँ पड़ी है ? जगत को यह जँचेगा या नहीं ? उथल जायेगा। ऐसा सुनकर कि यह तो एकान्त है... एकान्त है.. मान न, तुझे मानना हो वैसा। तू भी स्वतन्त्र है न ? आहाहा! मार्ग तो यह एक ही है। एकान्त से यह एक ही मार्ग है। आहाहा!

वही एक... अथवा वह एक ही है **स्वाध्याय है।** चैतन्यमूर्ति, वीतरागमूर्ति प्रभु में एकाकार, स्व में एकाकार, निर्विकल्परूप से एकाकार, वह एक ही स्वाध्याय है। आहाहा! वाँचन का जो विकल्प उठता है, कहते हैं कि वह स्वाध्याय कथनमात्र है, कहनेमात्र है, व्यवहारमात्र है। आहाहा!

मुमुक्षु : चारों ही अनुयोग का स्वाध्याय करे तो मर्म खुले।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ से अन्दर (चले) तो मर्म खुले। आहाहा! यह कहते हैं, और वह चार अनुयोग का... परन्तु चारों ही अनुयोगों का सार आत्मा है। आत्मा में सब भरा है या नहीं ? ज्ञान आता है, वह चार अनुयोग को वाँचन में से ज्ञान आवे ? या जहाँ है,

उसमें से आवे ? बाहर चार अनुयोग के ज्ञान में यह ज्ञान है ? आहाहा ! जहाँ ज्ञानस्वरूप प्रभु है, वह ज्ञानस्वरूप है, वहाँ से ज्ञान आवे या बाहर से ज्ञान आवे ? न्याय से पकड़ेगा या नहीं ?

श्रीमद् ने तो एक बार ऐसा भी कहा कि बहुत वाँचन-वाँचन करे वह तो दिया होगा। वहाँ और वहाँ बातें किया करे। इसका ऐसा है... इसका ऐसा है... इसका ऐसा है... परन्तु अन्दर जाना है, वह सार क्या चीज़ है... ऐसा श्रीमद् ने कहा है। श्रीमद् वाँचन बहुत करते थे। अकेला वाँचन... वाँचन... वाँचन... वाँचन... रात और दिन वाँचन। वेदियो हो जायेगा। वेदिया ब्राह्मण होते हैं न ? वेद कण्ठस्थ करके वेदिया जैसे होते हैं। कुछ ठिकाना नहीं होता। आहाहा ! हमार गढडा में एक था। वह वेदिया कहलाता था, ब्राह्मण था, वेद कण्ठस्थ था। ऐसे डालकर आटा माँगने निकले। मैं दुकान पर बैठा होऊँ, वहाँ हमारे वनमाली काका की दुकान थी। उनकी दुकान में बैठा हो, तब निकला हो तो कहे, देखो, इसे चार वेद कण्ठस्थ है। आटा माँगने निकला है, वह वेदिया है, कहे। आहाहा !

मुमुक्षु : घी के आधार से बर्तन या बर्तन के आधार से घी ?

पूज्य गुरुदेवश्री : घी के आधार से घी। बर्तन के आधार से बर्तन। बर्तन के आधार से बर्तन। घी के आधार से घी। नीचे रहे तो भी स्वयं का आधार, उसमें रहे तो भी स्वयं का आधार। बर्तन का आधार घी को है ही नहीं। अरे रे ! ऐसी बातें ? यशपालजी ! ऐसी बातें। कहो, घी है, वह वस्तु परमाणु का पिण्ड है। जहाँ होगा, वहाँ उस परमाणु में आधार नाम का गुण है। षट्कारक सत्पर्याय है। शक्ति है, वह तो जहाँ होगी वहाँ पर्याय स्वयं के आधार से वहाँ रहती है। एक परमाणु दूसरे परमाणु के आधार से नहीं है। आहाहा ! यह है, वह उसके आधार से रहा हुआ नहीं है। कहो, यह है न यह ? यह उसके आधार से रहा हुआ नहीं है। यह वस्तु है। एक-एक परमाणु, उसे षट्कारक हैं। कर्ता, कर्म (आदि षट्कारक)। वह अपने आधार से वहाँ रहा है। आहाहा ! ऐसी बात कठिन पड़ती है। क्या हो ? भाई ! आहाहा ! यह अब आयेगा। मरण के समय, बापू ! तू क्या करेगा ? देह छूटने का काल आयेगा। अकेला मरण। अब गाथा आयेगी। '**एगो य मरदि**'... '**एगो य मरदि**' है न ? पहली ही लाईन है। '**एगो य मरदि**' देह छूटेगी, वहाँ अकेला मरेगा, बापू ! कोई तुझे शरण नहीं है। णमो अरिहन्ताणं... णमो अरिहन्ताणं... करके मरेगा तो भी वह राग है। वह कहीं

आत्मा नहीं है। आहाहा! यह तो णमो अरिहन्ताणं करते हुए मरे तो समाधिमरण हो गया। स्वाध्याय सुनते-सुनते देह छूट जाए तो स्वाध्याय हो गयी। पण्डितमरण, समाधिमरण हुआ। लोग (ऐसी गप्प) हाँक रखते हैं। आहाहा!

बनिया बाहर माल लेने जाए तो बहुत तुलाते हैं, कसौटी करके माल लेते हैं। जरा सी लौकी-लौकी, सब्जी लेने जाए तो लौकी में कहीं टुवो-टुवो। टुवो समझ में आया? टुवो नहीं समझते? सड़ने का भाग जरा दिखायी दे। जरा ऊपर का दिखायी दे तो न ले। अभी सड़ने का भाग आगे न गया हो, ऊपर का दिखायी दे तो भी नहीं ले। नहीं, यह लौकी नहीं, सड़ी हुई लौकी नहीं। टुवो अर्थात् सड़ा हुआ भाग। ऊपर सड़ा हुआ हो। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : पर्याय, ध्रुव के आधार से तो टिक रही है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। पर्याय, पर्याय के आधार से है। पर्याय में षट्कारक है। यह तो अपने आ गया। चार प्रकार आये। मुझे, मेरे द्वारा, मुझमें, मुझसे मुझे देखता हूँ ऐसा कहकर फिर उतारे हैं। चेतना द्वारा चेतता हूँ, दर्शन द्वारा देखता हूँ; पश्चात् ज्ञान द्वारा जानता हूँ। पहले मेरे द्वारा कहकर, फिर उसे चेतना में उतार डाला, पश्चात् दर्शन-ज्ञान में डाला। चार बार चौबीस बोल उतारे हैं। आहाहा! रूखा लगे। वीतरागमार्ग है, बापू! इसमें रस न पड़ता। वह राग न आवे, राग से कुछ रूखा लगे, राग की अपेक्षा से प्रभु का मार्ग रूखा लगे, बाकी है रसवाला।

अतीन्द्रिय आनन्द के रसवाला प्रभु का मार्ग... आहाहा! राग के रस की अपेक्षा से रूखा लगता है। आहाहा! ऐसा मार्ग है, उड़ा डालते हैं। एकान्त है... एकान्त है... एकान्त है... सोनगढ़ का एकान्त है। अभी एक व्यक्ति की पुस्तक आयी है ब्रह्मचारी की। कोई मर गया होगा अहमदाबाद, तो उसकी पुस्तक निकाली। ब्रह्मचर्य बहुत सब विस्तार है। अब ये लोग सब लौकिक हैं परन्तु उसमें भेंट दी है। उसमें लेखक ने सामने लिखा है कि उपादान को प्रसारित करनेवाले कानजीस्वामी एक ही हैं, उन्हें यह भेंट देता हूँ। उपादान से होता है, इसका प्रचार उन्होंने एक ने ही किया है। पुस्तक आयी थी, तो फिर ब्रह्मचर्य सरल होगा या नहीं? ऐसे शब्द हैं। व्याख्यान और बाहर की क्रिया, ब्रह्मचर्य, स्त्री का परिचय, हस्तक्रिया, यह बाहर के विषय की बातें सब बहुत लम्बाई है। लीलावती आदि

होगी, फिर कोई मर गया, उसके बाद बनायी है। लेखक ने सामने आगे मेरा नाम दिया है। ऊपर लिखा है, उपादान का प्रचार करनेवाले, उन्हें मैं भेंट देता हूँ। श्री कानजीस्वामी। ऐसा करके। उपादान का कुछ... उसका अर्थ कुछ उपादान का था नहीं। निमित्त से होता है... निमित्त से होता है... उपादान से कठिन बात क्रमबद्ध है। उपादान में आ गयी। जिस समय अपना होता है। उपादान-उपादेय भी एक बात है। पूर्व की पर्याय उपादान और बाद की पर्याय उपादेय। यह भी एक है। तब निमित्त की अपेक्षा से उसे नैमित्तिक कहा जाता है और उपादान की अपेक्षा से उपादेय कहा जाता है, यह एक व्यवहार की शैली है। निश्चय से तो ध्रुव उपादान है और क्षणिक पर्याय उत्पन्न हो, वह उपादान है। तो उस क्षण में जो उत्पन्न होने की पर्याय हो, वह पर्याय उत्पन्न हो, उसे उपादान कहते हैं और उस उपादान को द्रव्य-गुण के, निमित्त की आवश्यकता नहीं है। वह षट्कारकरूप से उपादान की पर्याय परिणमित होती है। आहाहा!

पद्मनन्दिपंचविंशति। एक ही स्वाध्याय है। आहाहा! इतनी बार समयसार पढ़ा, प्रवचनसार पढ़ा, पंचास्तिकाय पढ़ा। यह सब भगवान अन्दर आनन्दस्वरूप प्रभु स्व-अध्याय। उसका अध्याय, उसका अध्याय और अन्दर में रमण, वह स्वाध्याय है। आहाहा! यह पद्मनन्दिपंचविंशति का आधार दिया है। दो गाथा (श्लोक) कल पूरी हुई थी। कल दो गाथा में आया था कि नमस्कार करनेयोग्य है। पहला ज्ञान-दर्शन-चारित्र और तप आया था, कि आत्मा आनन्दस्वरूप प्रभु है, वही ज्ञान है, वही दर्शन है, वही चारित्र है और तप है। पश्चात् आया था कि नमस्कार करनेयोग्य भी प्रभु आत्मा है। आहाहा! और उत्तम भी वह है, मांगलिक भी वह है और शरण भी वही है। आठ बोल आये थे। दूसरे चार बोल आज आये। यह बारह बोल पद्मनन्दिपंचविंशति में हैं।

एकत्वसप्तति... एकपने में दूसरे की बात की आवश्यकता नहीं। आहाहा! इस पुस्तक के अधिकार में एकत्वसप्तति है न? उसमें आ गया न? **इस प्रकार एकत्वसप्तति में (-श्री पद्मनन्दि-आचार्यवरकृत पद्मनन्दिपंचविंशतिका के एकत्वसप्तति नामक अधिकार में...)** एकत्वसप्तति अधिकार। एक रूप में द्विरूप नहीं। ऐसा पूरा एक अधिकार है। यहाँ उसकी तीन गाथाएँ रखी हैं। अब स्वयं।

श्लोक-१३५

और (इस १००वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज दो श्लोक कहते हैं):—

(मालिनी)

मम सहज-सुदृष्टौ शुद्ध-बोधे चरित्रे,
सुकृतदुरितकर्मद्वन्दसन्न्यासकाले।
भवति स परमात्मा सम्वरे शुद्ध-योगे,
न च न च भुवि कोऽप्यन्योऽस्ति मुक्त्यै पदार्थः।।१३५।।

(वीरछन्द)

मेरे सहज सुदर्शन में अरु शुद्ध ज्ञान में चारित्र में।
और शुभाशुभ कर्मद्वन्द्व के पावन प्रत्याख्यान समय॥
संवर में शुद्धोपयोग में एक यही परमात्मा ही।
मुक्ति प्राप्ति के लिए जगत में कोई अन्य पदार्थ नहीं॥१३५॥

[श्लोकार्थः] मेरे सहज सम्यग्दर्शन में, शुद्धज्ञान में, चारित्र में, सुकृत और दुष्कृतरूपी कर्मद्वन्द्व के संन्यास काल में (अर्थात् प्रत्याख्यान में), संवर में और शुद्ध योग में (-शुद्धोपयोग में) वह परमात्मा ही है (अर्थात् सम्यग्दर्शनादि सभी का आश्रय—अवलम्बन शुद्धात्मा ही है); मुक्ति की प्राप्ति के लिए जगत में अन्य कोई भी पदार्थ नहीं है, नहीं है॥१३५॥

श्लोक -१३५ पर प्रवचन

और (इस १००वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज दो श्लोक कहते हैं):— १०० गाथा, १०० है। उसमें बारह बोल आये। १०० में सब पूरा आया। आहाहा! अब पद्मप्रभमुनि स्वयं दो श्लोक कहते हैं। १३५वाँ कलश।

मम सहज-सुदृष्टौ शुद्ध-बोधे चरित्रे,
सुकृतदुरितकर्मद्वन्दसन्न्यासकाले ।
भवति स परमात्मा सम्वरे शुद्ध-योगे,
न च न च भुवि कोऽप्यन्योऽस्ति मुक्त्यै पदार्थः।।१३५।।

आहाहा ! **मेरे सहज सम्यग्दर्शन में,...** मेरे सहज सम्यग्दर्शन में मेरा प्रभु है । कोई देव-गुरु-शास्त्र मेरे सम्यग्दर्शन के विषय में हैं नहीं । आहाहा ! है ? **मेरे सहज सम्यग्दर्शन में,...** मेरा वह परमात्मा ही है । तीसरी लाईन । मेरा परमात्मा है । वही मुझमें है । सबका आश्रय, अवलम्बन भगवान है । सम्यग्दर्शन में आश्रय, अवलम्बन शुद्धात्मा है । सम्यग्दर्शन में कोई बाहर का आधार नहीं है । आहाहा ! अब ऐसा सूक्ष्म । कितनों को तो ऐसा कि मेरा क्या होगा ? यहाँ से कहाँ जाऊँगा ? यह देह तो छूट जायेगी और भविष्य में अनन्त काल रहना है । कहाँ रहेगा ? बापू ! आहाहा ! वह बेभान करके चला जायेगा । माँस-वाँस तो न खाता हो । बड़ा भाग तो अभी माँस खानेवाला है । बौद्ध-बौद्ध गाय का माँस नहीं खाता । माँस खाता है । अर..र..र.. ! गजब है । ईसाई माँस खाते हैं, वे तो गाय का माँस खाते हैं । यह तो ईशु मरता था, उसने गाय का माँस माँगा था, जड़ा तब । आहाहा ! वह परमेश्वर कहलाया । परमेश्वर, वह ईश्वर का पुत्र कहलाया । आहाहा ! और मुसलमान । अफ्रीका के सिवाय क्या कहा ? अफगानिस्तान । अफगानिस्थान, पाकिस्तान, वह तो सब मुसलमान से भरे हुए । बड़ा भाग मुसलमान है, बड़ा भाग ईसाई है, बड़ा भाग बौद्ध है । हिन्दुस्तान में तो लोग बहुत थोड़े और थोड़ा भाग है । आहाहा ! उसमें यह और ऐसा सुनने का... अरे ! बेचारों को कहाँ मिले ? बापू !

वह बेचारा पोप पाँच-पाँच करोड़ की मोटर में बैठनेवाला । इस प्रकार उसकी बाहर की साहबी कैसी होगी ? पोप को पाँच करोड़ की एक मोटर । वह भाई ! बापू ! माँस खानेवाला मरकर... अरे रे ! उस बेचारे को सुनने को मिलता नहीं और मरकर नरक में जाए । यहाँ सब गुरु कहलाये । आहाहा ! कठिन मार्ग । नरक की गति जानेवाले लोग भी बहुत, तिर्यंच भी बहुत है । आहाहा ! ऐसा मनुष्यपना मिला, उसमें हिन्दुस्तान में हिन्दी, उसमें आर्यकुल, उसमें जैनकुल, उसमें जैनकुल में वाणी, बहुत महँगी, बापू ! यह कहीं अरबों रुपयों में मिले, ऐसा नहीं है । उसकी कोई कीमत नहीं है । आहाहा !

यह यहाँ कहते हैं कि मेरे सम्यग्दर्शन में मेरा प्रभु है। आहाहा! मेरा परमात्मा -ऐसा कहा। है न? तीसरी लाईन में आया न? **मेरे सहज सम्यग्दर्शन में,... वह परमात्मा ही है...** परमात्मा है, वह मेरे सम्यग्दर्शन में है। वह परमात्मा कौन? यह (आत्मा)। पूर्ण परमात्मस्वरूप जो आत्मा... आहाहा! उसमें यह माँस और हड्डियों जैसा शरीर, उसमें स्त्री और पुत्र। अब उसमें किस प्रकार बात जँचे? आहाहा! विचार करने का अवकाश नहीं मिलता। जिन्दगी चली जाती है। यहाँ तो कहते हैं कि सम्यग्दर्शन धर्म की पहली शुरुआत। धर्म की पहली शुरुआत, उस **मेरे सहज सम्यग्दर्शन में,...** वह सहज सम्यग्दर्शन, स्वभाविक, निश्चय। सहज कहा है न? मेरे निश्चय सहज सम्यग्दर्शन में वह परमात्मा ही है। मेरा प्रभु पूर्ण जो परमात्मा, वह मेरे सम्यग्दर्शन में है। मुझे उसका अवलम्बन है, उसका आश्रय है, उसका आधार है, उसका ध्येय है। आहाहा! शब्द तो बहुत सादे हैं, परन्तु अब भाव तो दूसरा क्या हो? चाहे जितना उसे सरल करे। आहाहा!

मेरे सहज सम्यग्दर्शन में, शुद्धज्ञान में,... सब लेना। वह है न सहज सम्यग्दर्शन। वैसे मेरे सहज **शुद्धज्ञान में,...** स्वभाविक ज्ञान में। शास्त्रज्ञान आदि, वह नहीं। आहाहा! मेरा जो सहज सम्यग्ज्ञान, उस ज्ञान में मेरा परमात्मा ही है। वह वापस परमात्मा 'ही' है, ऐसा लिया है। एकान्त लिया है। यह भी है और वह भी है, ऐसा नहीं। अनेकान्त ऐसा कहते हैं न लोग? अनेकान्त का अर्थ ऐसा (कि) कथंचित् निश्चय से होता है, कथंचित् व्यवहार से होता है, तो यह अनेकान्त है। कथंचित् निमित्त से होता है, कथंचित् उपादान से होता है। यहाँ इनकार करते हैं। आहाहा!

मेरे **शुद्धज्ञान में,...** परमात्मा ही है। **परमात्मा ही है...** क्योंकि मेरा जो ज्ञान है, उसका ध्येय-अवलम्बन-आश्रय और आधार परमात्मा-स्वरूप स्वयं है। अपना परमात्मस्वरूप है, वह शुद्ध ज्ञान का आलम्बन-आधार है। शब्दों का आलम्बन है, इसलिए यह सम्यग्ज्ञान है-ऐसा नहीं। आहाहा! भगवान की प्रतिमा देखकर दर्शन हो.. उसमें आता है - धवल में। भगवान के दर्शन से निद्धत और निकाचित कर्म टूटते हैं। देखा? धवल में। वह भगवान, यह भगवान है। आहाहा! इस भगवान को देखकर, देखकर कि ऐसा ही मेरा प्रभु अन्दर है। ऐसे परमात्मस्वरूप अन्दर राग और पुण्य-पाप के विकल्परहित, ऐसा जो आत्मा वह परमात्मा ही मेरे शुद्ध ज्ञान में है। आहाहा! उस शुद्ध ज्ञान में ही आश्रय है, अवलम्बन शुद्धात्मा ही है। आहाहा!

चारित्र में,... गाथा में है न ? उसका टीकाकार... **चारित्र में,...** भी मेरा परमात्मा है। चारित्र में पंच महाव्रत और अट्ठाईस मूलगुण, वह कहीं चारित्र में है, ऐसा नहीं है। आहाहा! ऐसी बात एक तो सुनना कठिन पड़े। कपूरभाई! जिन्दगी धन्धे में निकाली, स्त्री, पुत्र में निकाली, उसमें ऐसी बात आयी। बात दूसरी निकली। धर्म के नाम से सुना था, उससे दूसरी बात निकली। संसार के बहाने तो ठीक। आहाहा! मार्ग ऐसा है, प्रभु! आहाहा! मेरे **चारित्र में,...** मेरा **परमात्मा ही है...** पंच महाव्रत और विकल्प-फिकल्प मेरे चारित्र में नहीं है। आहाहा! यह पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि ९०० वर्ष पहले हो गये हैं। वे स्वयं कहते हैं। आहाहा!

सुकृत और दुष्कृतरूपी कर्मद्वन्द्व के संन्यास काल में... आहाहा! क्या कहते हैं ? शुभ और अशुभभाव जो है, उनके त्याग काल में **(अर्थात् प्रत्याख्यान में),...** मेरा परमात्मा ही है। शुभ-अशुभभाव के त्याग में अर्थात् प्रत्याख्यान में, शुभभाव के त्याग में, प्रत्याख्यान में भी मेरा परमात्मा ही है। आहाहा! यह शुभभाव, वह प्रत्याख्यान नहीं है। ऐसा है। क्या कहा ? **सुकृत...** अर्थात् शुभभाव। दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, यात्रा, शास्त्र स्वाध्याय, वाँचन-श्रवण, मनन, यह सब सुकृत और दुष्कृत पाप है। यह कर्मद्वन्द्व। यह कर्म का द्वन्द्व दो प्रकार से। एक इसके संन्यास काल में, इसके त्याग काल में। दो के त्याग के समय में अर्थात् दो के त्याग के समय में अर्थात् प्रत्याख्यान में मेरा परमात्मा है। आहाहा!

संवर में... संवर.. संवर। शुभभाव और अशुभ से रहित ऐसे संवर में मेरा परमात्मा है। आहाहा! वह तो बाहर का पच्चखाण करके बैठ गया। मुझे संवर है, (ऐसा मान लिया)। अरे! भगवान! संवर कोई अलग चीज़ है, बापू! काल चला जा रहा है, ऐसा समय नहीं मिलेगा। इसलिए करने का यह है, इसे विकल्पसहित दृढ़ श्रद्धा तो कर कि यह एक ही कर्तव्य करनेयोग्य है। इससे रहित होकर निर्मल होना, वह (करनेयोग्य है)। आहाहा!

संवर में और शुद्ध योग में... शुद्ध योग अर्थात् **(-शुद्धोपयोग में)...** है न ? शुद्ध योग, पाठ में है। पाठ में था और गाथा में भी था। गाथा में था योग में। गाथा है न ? उसमें योग था। १००वीं गाथा **'संवरे जोगे'** १००वीं गाथा में। **'संवरे जोगे'** योग अर्थात् शुद्धोपयोग। आहाहा! अब यहाँ (आजकल) कहते हैं कि अभी शुद्धोपयोग नहीं होता,

अभी तो मुनि को शुभयोग ही होता है। अरे! प्रभु! क्या करता है? भाई! परमात्मा का तो यह (पुकार है) उनकी शैली का भी तू विरोध करता है! आहाहा!

दया, दान, व्रत, भक्ति, यात्रा का राग, वह तो राग है; वह कहीं शुद्धोपयोग नहीं है और शुद्धोपयोग के बिना परमात्मा निकट में नहीं है। शुभराग में परमात्मा है नहीं। वह तो अनात्मा है। आहाहा! शुद्धोपयोग में **वह परमात्मा ही है।** आहाहा! **(अर्थात् सम्यग्दर्शनादि सभी का आश्रय)...** सम्यग्दर्शन का, सम्यग्ज्ञान का, सम्यक्चारित्र का, प्रत्याख्यान का, संवर का और शुद्धोपयोग का। **(सभी का आश्रय—अवलम्बन शुद्धात्मा ही है);...** शुद्ध आत्मा 'ही' है। आहाहा! किसी प्रकार से व्यवहार भी है और व्यवहार से होता है, यह लोगों को ऐसा अच्छा लगता है जयसेनाचार्य की टीका। व्यवहार साधन, निश्चय साध्य। परन्तु वह तो निमित्त का ज्ञान कराया है, भाई! तो यह सब खोटा पड़ेगा। अब ऐसी बातें अभी चलती है। क्या हो? प्रभु रहे वहाँ। यहाँ कोई आता नहीं। देव भी नहीं होते और भगवान तो आये नहीं। आते नहीं। आहाहा! यह भगवान है, उसके पास जाता नहीं। आहाहा!

(अर्थात् सम्यग्दर्शनादि सभी का आश्रय—अवलम्बन शुद्धात्मा ही है);... त्रिकाली शुद्ध प्रभु दया, दान, व्रत के परिणामरहित, वही धर्म का आश्रय है। वह धर्म का अवलम्बन है। वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान का आश्रय और आधार वह है। **मुक्ति की प्राप्ति के लिए...** जिसे मुक्ति चाहिए हो, उसके लिये। **जगत में अन्य कोई भी पदार्थ नहीं है, नहीं है।** दो बार कहा है। पाठ में है न? **'न च न च'** आहाहा! जिसे मोक्ष चाहिए हो। धर्म का फल मोक्ष, तो मोक्ष का फल चाहिए हो, उसे एक ही आत्मा ही एक शुद्ध चैतन्यमूर्ति वीतराग निर्मलानन्द एक ही आधार है। दूसरा कोई पदार्थ नहीं। आत्मा के अतिरिक्त कोई पर भी मुक्ति के लिये आधार नहीं है। यह विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)